International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(3): 259-261

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(3): 259-261
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 25-02-2023
Accepted: 03-03-2023

Rekha Arora
Post Associate Professor,
Department of Sanskrit,
College Miranda House, Delhi,
India

Corresponding Author:
Rekha Arora
Post Associate Professor,
Department of Sanskrit,
College Miranda House, Delhi,
India

पदार्थ–स्वरूप

Rekha Arora

सारांश
शब्दोच्चारण करने पर नियमित रूप से अर्थप्रतीति होती है, वस्तुतः अर्थाभिव्यक्ति ही शब्द प्रयोग का मूल कारण है । वक्ता शब्दों के माध्यम से ही अपने भावों का संप्रेषण करता है । एतदर्थ ही आचार्य दण्डी ने शब्द को ज्योति की संज्ञा दी है। इस शब्द रूप ज्योति से ही संपूर्ण जगत् का कार्यव्यापार चलता है।

इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायेत् भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

शब्द से बोध्य इस अर्थ का स्वरूप क्या हैघ अर्थात् क्या शब्द जातिरूप अर्थ की प्रतीति करवाते हैं या व्यक्तिरूप अथवा शब्द से दोनों ही अर्थों का अभिधान किया जाता है। इस विषय पर प्राचीन काल से ही विमर्श होता रहा हैए प्रस्तुत पत्र में वैयाकरणों के मत का विवेचन किया गया है ।

कूटशब्द : पदार्थ–स्वरूप, वाजप्यायन आचार्य, सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ, कार्यव्यापार

प्रस्तावना
भारतीय दर्शन की प्रायः प्रत्येक शाखा में पद के द्वारा बोध्य अर्थ के स्वरूप का विवेचन किया गया है। यह नियत अर्थ किस रूप में उपस्थित होता है, इस विषय में आचार्यों में विमति है। कुछ आचार्य पद का अर्थ जाति मानते हैं, कुछ व्यक्ति, कुछ जाति और व्यक्ति दोनों, तो कतिपय अन्य शब्द का जात्याकृति विशिष्ट अर्थ स्वीकार करते हैं।
जाति और व्यक्ति इस विषय पर विमर्श का आरम्भ वाजप्यायन और व्याडि के मतों से होता है। वाजप्यायन जातिपदार्थवाद और व्याडि व्यक्तिपदार्थवाद के प्रमुख प्रवर्तक हैं –

आकृत्यभिधानाद्वैकं विभक्तौ वाजप्यायनः।[1]
द्रव्याभिधानं व्याडिः।[2]

वाजप्यायन आचार्य के मत में आकृति एक है और शब्द के द्वारा उसी की ही अभिव्यक्ति की जाती है।[3] दूसरी ओर व्याडि के मत में शब्द से द्रव्य अर्थात् व्यक्ति का ही बोध होता है, जाति का नहीं।
व्याकरणपरंपरा के अनुसार शब्द और अर्थ में नित्य संबंध है।[4] वैयाकरण शब्द से जाति एवं व्यक्ति दोनों को ही बोध्य मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य पाणिनि को भी यह मत अभिप्रेत है, यद्यपि पाणिनि ने शब्दशः इसका उल्लेख नहीं किया है तथापि जाति और व्यक्ति दोनों के समर्थक सूत्र अष्टाध्यायी में प्राप्त होते हैं। जातिवाद को लक्ष्य कर पाणिनि ने जात्याख्यायामेकास्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्[5] सूत्र की रचना की और व्यक्ति को लक्ष्य कर 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ'[6] सूत्र का प्रणयन किया।
आचार्य वाजप्यायन और व्याडि ने अपने–अपने मत की स्थापना में अनेक तर्क दिए हैं। वाजप्यायन के मत में शब्द के द्वारा जाति का ही बोध होता है[7], यथा 'गौ' शब्द का उच्चारण करने पर शुक्ल, नीली, पीली आदि विशेषताओं का बोध नहीं होता अपितु गोत्व जाति से युक्त गाय सामान्य का बोध होता है।[8] गाय कहने पर अभिन्न का ज्ञान होता है। शुक्ल, नीली, कपिला का ज्ञान नहीं होता है अतः जाति ही शब्द का वाच्यार्थ है।
बहुविध गायों की विवक्षा में एक ही शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि एक वर्ग में अन्तर्भूत सभी व्यक्तियों का एक सामान्य स्वरूप है, जिसे जाति या सामान्य कहते हैं।[9]

यहाँ यह कहा जा सकता है कि जाति के प्रसंग में एकत्व की धारणा तो उपयुक्त हो सकती है किन्तु उससे यह सूचित नहीं होता कि शब्द का अर्थ केवल जाति है और कुछ नहीं क्योंकि दोहन आदि क्रियाओं का तथा कारक संबंध का अन्वय तो व्यक्ति के साथ ही हो सकता है, जाति के साथ कारक का अन्वय कभी भी संभव नहीं। इस आक्षेप के उत्तर में जातिवादियों का कथन है कि व्यक्ति को शब्द का वाच्यार्थ नहीं माना जा सकता। सर्वप्रथम तो व्यक्तियों की संख्या अनन्त है और शब्द द्वारा उन सबका कथन असंभव है।[10] दूसरे यदि ऐसा माना जाए कि एक शब्द एक व्यक्ति विशेष का कथन करता है तो वह अन्य व्यक्तियों का कथन कभी भी नहीं कर सकेगा और इस प्रकार व्यक्तियों की संख्या के अनुरूप ही असंख्य शब्दों की कल्पना करनी होगी जो कि असंगत है।

शब्द कभी भी व्यक्ति की प्रतीति उसकी संपूर्ण विशेषताओं के साथ नहीं करवाता। व्यक्ति को उसकी संपूर्ण वैयक्तिकता के साथ केवल अपनी अन्तःप्रज्ञा से ही जाना जा सकता है। शब्द तो मात्र एक रूपरेखा प्रस्तुत करता है जो प्रायः सभी व्यक्तियों पर सही बैठती है। जातिवादी अपने पक्ष को संपुष्ट करने में एक अन्य तर्क देते हैं कि एक गाय का ज्ञान हो जाने पर अन्य स्थान और अन्य काल में भिन्न आयु और भिन्न रूप वाली गाय को देखकर यह ज्ञान हो जाता है कि वह गाय है।[11] यदि 'गो' शब्द का कोई विशेष वाच्यार्थ होता तो उस समूह के किसी भी अन्य व्यक्ति के लिए 'गो' शब्द का प्रयोग न हो पाता।

धर्मशास्त्र के वचनों की संगति भी जाति को पदार्थ मानने पर होती है। धर्मशास्त्रों का आदेश है – ब्राह्मणो न हन्तव्यः, सुरा न पेया इन आदेशों से ब्राह्मण मात्र की हत्या और मदिरा पान का निषेध किया गया है। यदि व्यक्ति को पदार्थ मानते हैं तो एक ब्राह्मण की हत्या न करने और एक प्रकार की मदिरा न पीने से उपर्युक्त आदेश पूरे हो जायेंगे। ऐसे में निषेध वचनों की सार्थकता सिद्ध नहीं हो पायेगी। जाति को पदार्थ मानने पर ही समस्त ब्राह्मणों की हत्या और सुरापान का निषेध प्रभृति वचनों की प्रवृत्ति संभव होती है।[12]

यहाँ प्रतिपक्ष की ओर से इस तर्क की संभावना में कि एक ही जाति एक साथ अनेक स्थानों पर कैसे हो सकती है? एक ही देवदत्त एक साथ मथुरा और सुघ्न में नहीं हो सकता। जैसे आकाश में स्थित सूर्य एक ही समय में अनेक स्थलों पर एक साथ उपलब्ध होता है, वैसे ही जाति भी विभिन्न व्यक्तियों में एक साथ उपलब्ध होती है। पतञ्जलि के शब्दों में यह दृष्टान्त उचित नहीं है[13] क्योंकि एक ही द्रष्टा सूर्य को अनेक स्थानों पर एक साथ नहीं देखता। आचार्य पतञ्जलि के अनुसार जाति इन्द्र के समान है।[14] जैसे एक ही इन्द्र सैंकड़ों यज्ञों में एक ही समय पर आह्वान करने पर सब जगह एक ही समय पर उपस्थित होते हैं। इसी प्रकार जाति भी अपनी समस्त इकाईयों से एक साथ सम्बद्ध हो जाती है यदि अनेक व्यक्तियों से एक जाति का संबंध असंभव होता तो एक शब्द अनेक व्यक्तियों को अभिव्यक्त न कर पाता जबकि 'एकशेष' में बचा हुआ एक पद अनेकों की अभिव्यक्ति करता है। यदि शब्द से केवल व्यक्ति का ही अभिधान किया जाएगा तो उससे जाति का ज्ञान नहीं होगा। परिणामतः एक शब्द से समस्त द्रव्यों का ज्ञान नहीं होगा।[15] शास्त्रीय आदेशों में भी एक शब्द की उसकी उपाधियों में प्रवृत्ति से ज्ञात होता है कि शब्द का अर्थ जाति है। यथा आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् अर्थात् अग्नि देवता है जिसका ऐसे अष्टाकपाल में पुरोडाश करे। यह शास्त्र वचन कहता है कि एक आग्नेय अष्टाकपाल का निर्वाण करके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ का भी निर्वाण किया जाए। यदि द्रव्य को पदार्थ मानें तो एक बार ही याग की प्रवृत्ति होगी, दूसरी और तीसरी बार याग की उपपत्ति नहीं हो पाएगी। इस प्रकार शास्त्रीय आदेशों के आधार पर जाति को ही पदार्थ मानना उचित है।[16]

व्याडि का मत – व्यक्ति पदार्थवाद

द्वितीय मत आचार्य व्याडि का है। वाजप्यायन के विपरीत इनके मत में पद द्रव्य अर्थात् व्यक्ति का बोध करवाता है।

व्याडि के पक्ष की स्थापना में अनेक युक्तियाँ दी गई हैं। यथा, व्यक्ति को पदार्थ मानने पर ही लिंग और वचन की सिद्धि होती है[17] ब्राह्मणी–ब्राह्मणः, ब्राह्मणौ–ब्राह्मणाः यहाँ ब्राह्मण शब्द में लिंग और वचन की सिद्धि व्यक्ति को पदार्थ मानने पर ही हो सकती है जाति से नहीं क्योंकि ब्राह्मणत्व जाति के एक होने के कारण वह सर्वत्र सभी लिंगों में समान रूप से विद्यमान होती है। इससे लिंग और वचन भेद की सिद्धि नहीं होती। आदेशों में भी व्यक्ति में ही कार्य किया जाता है 'गामानय' कहने पर गाय जाति नहीं अपितु गो व्यक्ति ही लाया जाता है। एक जाति एक समय में अनेक स्थानों पर नहीं रह सकती[18] जैसा कि जातिवादी मानते हैं। जाति को पदार्थ मानने पर सबका नाश और उत्पत्ति एक साथ होगी। ऐसा होगा तो एक गाय के मरने पर सभी का नाश, और एक के जन्म लेने पर सबकी उत्पत्ति होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त पदार्थों में विभिन्नता या विरूपता भी पाई जाती है।[19] गो समूह में कोई गो टूटे सींग वाली और कोई बिना सींग वाली भी हो सकती है, लेकिन जाति तो समान बुद्धि उत्पन्न करने वाली कही गई है। पदार्थों में विभिन्नता मानकर ही विग्रह किया जाता है। गौश्च गौश्च (गावौ) यह द्विवचनात्मक अभिव्यक्ति दो पृथक्–पृथक् सत्ताओं को सूचित करती है। यदि दोनों का अर्थ एक स्वतः अभिन्न जाति हो तो उपर्युक्त प्रयोग नहीं हो सकता। अतः व्याडि के मत में व्यक्ति ही पदार्थ है।

वैयाकरणों का अभिमत उभयपदार्थवाद

वाजप्यायन और व्याडि दोनों आचार्यों के मतों के विश्लेषण से जाति और व्यक्ति दोनों ही ग्राह्य प्रतीत होते हैं। अतः वैयाकरणों ने उभयपदार्थपक्ष को अपनाया है। कात्यायन और पतञ्जलि ने शब्दों की जाति और व्यक्ति दोनों में प्रवृत्ति होने पर ही व्यवस्था को संभव माना है। पतंजलि का कथन है कि द्रव्य और आकृति अलग नहीं किए जा सकते।[20] जातिवाचक शब्द से जाति का भी बोध होता है और व्यक्ति का भी। उदाहरणार्थ जब गो समूह में स्थित गोपाल से कोई पूछता है कि किसी 'गो' को देख रहे हो? तो गोपाल यह जानता हुआ भी कि प्रश्नकर्त्ता जातिवाचक शब्द का प्रयोग समस्त गऊओं को देखते हुए कर रहा है, तो वह समझ लेता है कि इस जातिवाचक 'गो' शब्द से प्रश्नकर्त्ता को गो विशेष या गोव्यक्ति ही इष्ट है।[21]

पतञ्जलि के अनुसार जिस प्रकार जातिवाचक शब्द से जाति एवं द्रव्य दोनों का बोध होता है, उसी प्रकार द्रव्यवाचक शब्दों से द्रव्य एवं जाति दोनों अर्थ विवक्षित होते हैं।[22] जब जाति की प्रधानता होती है तो जाति को पदार्थ मानते हैं, व्यक्ति भी वहाँ विद्यमान रहता है। जब व्यक्ति की प्रधानता होती है तो व्यक्ति को पदार्थ मानते हैं, जाति वहाँ गौण रूप से उपस्थित रहती है। महाभाष्यकार ने जातिपदार्थपक्ष तथा व्यक्तिपदार्थपक्ष के विवाद को ही व्यर्थ माना है। उनका कहना है कि जाति पदार्थवादी तथा व्यक्तिपदार्थवादी क्रमशः आकृति और द्रव्य को पदार्थ मानते हुए अन्य क्रमशः (द्रव्य और आकृति) को भी पदार्थ मानते हैं। अन्तर केवल इतना है कि जातिपदार्थवादी जाति को मुख्य मानते हैं और द्रव्य को गौण। दोनों मत दोनों को ही शब्द से बोध्य मानते हैं। ऐसा करने से समस्त आक्षेप भी निरस्त हो जाते हैं। व्यक्तिवादियों का आक्षेप था कि जाति को पदार्थ मानने पर लिंग एवं वचन की व्यवस्था असिद्ध हो जाएगी। जातिवादियों ने इसका समाधान किया है कि गुणवाचक शब्दों के समान लिङ्ग एवं वचन की व्यवस्था संभव है। जिस प्रकार गुण जिस द्रव्य के लिए प्रयुक्त होते हैं उसी के अनुरूप उनके लिङ्ग एवं वचन निर्धारित होते हैं वैसे ही आकृति जिस द्रव्य का ग्रहण करती है उस द्रव्य के जो लिङ्ग और वचन होंगे वही लिंग और वचन आकृति के भी होंगे। जाति और व्यक्ति दोनों को पदार्थ स्वीकार कर लेने पर जात्याश्रय द्रव्य में आलम्भन आदि भी उपपन्न हो जाते हैं। साथ ही अनेक अधिकरणों में एक साथ विद्यमानता का आक्षेप भी दूर हो जाता है एवं द्रव्य के विनष्ट हो जाने पर भी जाति का विनाश नहीं होता, क्योंकि जिस प्रकार द्रव्य

के अधीन होने के कारण गुणों का द्रव्याश्रितत्व है, वैसा जाति का नहीं। यह एक है, नित्य है और सर्वत्र व्याप्त है। द्रव्य का स्वरूप इससे भिन्न है, इसलिए भी प्रत्येक द्रव्य के नष्ट हो जाने पर भी इसका विनाश नहीं होता। जिस प्रकार वृक्ष पर चढ़ा हुआ वितान वृक्ष के कट जाने पर भी नष्ट नहीं होता उसी प्रकार यह भी नष्ट नहीं होगा। अतः जाति एवं व्यक्ति दोनों को पदार्थ मानना चाहिए।

संदर्भ

1. अष्टाध्यायी 1.2.64 पर वार्तिक
2. अष्टाध्यायी 1.2.64 पर वार्तिक
3. महाभाष्य 1.2.64 एकाकृतिः सा चाभिधीयते।
4. म.भा. पस्पशाह्निक – सिद्धेशब्दार्थसंबंधे
5. अष्टाध्यायी 1.2.58
6. अष्टाध्यायी 1.2.64
7. म.भा. – 1.2.64 – एकाकृतिः सा चाभिधीयते।
8. म.भा – 1.2.64 – न हि गौरित्युक्ते विशेषः प्रख्यायते – शुक्ला नीला कपिला कपोतिकेति।
9. म.भा प्रदीप 1.2.64 – गौरित्येतेन शब्देनोक्ते प्रत्यायिते सामान्यलक्षणेऽर्थे विशेषानवधारणादैक्यं सामान्यस्यावसीयते।
10. म.भा. उद्योत 1.2.64 – व्यक्तीनां त्वानन्त्यात्तासु न शक्तिग्रहो।
11. म.भा. – 1.2.64
12. महाभाष्य 1.2.64 – एवं च कृत्वा धर्मशास्त्रं प्रवृत्तम् "ब्राह्मणो न हन्तव्यः" सुरा न पेयेति, ब्राह्मणमात्रं न हन्यते, सुरामात्रं च न पीयते।
13. महाभाष्य 1.2.64 – विषम उपन्यासः।
14. महाभाष्य 1.2.64 – इतीन्द्रवद्विषयः।
15. म.भा. – 1.2.64
16. म.भा. – 1.2.64 – चोदनायां चैकस्योपाधिवृत्तेर्मन्यामहे आकृतिरभिधीयते इति।
17. म.भा. – 1.2.64 – तथा च लिंगवचनसिद्धिः।
18. म.भा. – 1.2.64 – न चैकमनेकाधिकरणस्थं युगपत्।
19. म.भा. – 1.2.64 – अस्ति च वैरुप्यम्।
20. म.भा. – 2.1.51 – अव्यतिरेकाद् द्रव्याकृत्योः।
21. म.भा. – 1.2.58
22. म.भा. – 1.2.64 – न ह्याकृतिपदार्थकस्य द्रव्यं न पदार्थः, द्रव्यपदार्थकस्य वा आकृतिर्न पदार्थः। उभयोरुभयं पदार्थः।